द्वितीय अध्याय

हिन्दी नाटकका विकासात्मक अध्ययन —

द्वितीय अध्याय

हिन्दी नाटकोंका विकासात्मक अध्ययन --

प्रस्तावना

मनुष्य के जीवन का यथार्थ चित्र नाटक में प्रस्तुत होता है । इसलिए कहा गया है -- ' सष्ठा नाटककार है,वही निर्देशक भी है,धरती का प्रशस्त वृक्ष मुक्ता काशी रंगमंच है,प्रतिक्षण घटित होनेवाला घटनात्मक नाट्य व्यापार है,जीवधारी पात्र है,सरिता,सागर,वन,पर्वत,खेत,खलिहान तथा नगर ग्राम दृश्य सज्जाएँ हैं । इस प्रकार जीवन स्वयं अविराम रूप से अभिनीयमान एक विराट नाटक है ।'[१] हिन्दी नाटक का विकास किस तरह हुआ है यह देखना यहाँ आवश्यक है ।

हिन्दी नाटक : काल विभाजन --

मानव का जो जीवन है,स्वयं वह एक नाटक ही है । इसका प्रतिबिंब हिन्दी नाटक में मिलता है ।हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास के बारेमें विद्वानों में मतभेद हैं । कुछ विद्वान हिन्दी नाटक का निर्माण काल रासो काव्य ग्रंथों के काल को मानते हैं तो कुछ आधुनिक युग को । इसीलिए हिन्दी नाटकों की विकासात्मक रूपरेखा देखते समय हिन्दी नाटक का काल विभाजन जो भिन्न-भिन्न विद्वानों ने किया है,उसे देखना युक्तिसंगत होगा । उसी के आधार पर हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की विकासात्मक रूप रेखा निश्चित की जा सकती है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने ' हिन्दी साहित्य का इतिहास ' में नाटक का काल-विभाजन तीन उत्थानों में किया है --

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी नाटक का विकास - पृ.९ ।

(१) प्रथम उत्थान (भारतेन्दु युग) १८६८ इ.स. से १८९३ इ. तक ।

(२) द्वितीय उत्थान (द्विवेदी युग) १८९३ इ.स. से १९२८ इ.तक ।

(३) तृतीय उत्थान (प्रसाद युग) १९२८ इ.स.से आजतक ।[२]

'हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास' ग्रंथ में डॉ.दशरथ ओझा जी ने नाटक का उद्भव रासो काल से माना है । उनके मतानुसार नाटक का कालविभाजन इस प्रकार है --

(१) प्रथम उत्थान : १५४३ इ.स.से पूर्व ।

(२) द्वितीय उत्थान : १५४३ इ.स.से १८४३ इ.तक ।

(३) तृतीय उत्थान : १८४३ इ.स.से १८६३ इ. तक ।

(४) चतुर्थ उत्थान : १८६३ इ.स.से १९१३ इ.तक ।

(५) पंचम उत्थान : १९१३ इ.स.से १९४३ इ.तक ।

(६) नवीन उत्थान: १९४३ इ.स. से आजतक ।[३]

डॉ.सोमनाथ गुप्ता जी का वर्गीकरण अपेक्षा कृत वैज्ञानिक है । वह इस तरह है --

(१) हिन्दी नाटक साहित्य का आरंभ १६४३ इ.स.से १८६६ इ.तक ।

(२) हिन्दी नाटक साहित्य का विकास १८६६ इ.स.से १९०४ इ.तक ।

(३) सन्धिकाल : १९०४ इ.स.से १९१५ इ.तक ।

(४) प्रसाद युग - १९१५ इ.स.से १९३३ इ.तक ।

(५) प्रसादोत्तर युग - १९३३ इ.स.से १९४४ इ.तक ।[४]

डॉ. श्रीमती शर्मा नाटक साहित्य का कालविभाजन इस प्रकार करते हैं --

(१) भारतेन्दु युग ।

(२) द्विवेदी युग ।

(३) प्रसाद युग ।

(४) प्रसादोत्तर युग ।

---

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल :हिन्दी नाटक का विकास - पृ.८-९ ।

३ डॉ.दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक,उद्भव और विकास - पृ.५३५-४५ ।

४ डॉ.सोमनाथ गुप्ता - हिन्दी नाटक -साहित्य का विकास -निर्देशिका ।

(५) आधुनिक युग । [५]

उपर्युक्त सभी कालविभाजन को देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी नाटक का प्रारंभ भारतेन्दु से ही हुआ है । यद्यपि कुछ फुटकर नाटकों की रचना इससे पूर्व की गई हो जिनमें भारतेन्दु के पिता बाबू गिरिधरदास कृत `नहुष` नाटक जिसे स्वयं भारतेन्दु ने हिन्दी का पहला नाटक स्वीकार किया है । लेकिन आज यह सिध्द हो गया है भारतेन्दु द्वारा (सन १८६८) में लिखे `विद्या सुन्दर` नाटक को हिन्दी नाटक का शिलान्यास माना जाता है । हिन्दी नाटक का विकास सही अर्थो में भारतेन्दु के काल से ही प्रारंभ होता है ।

पूर्ववर्ती काल में नाटक का अभाव तथा अभाव के कारण --

भारतीय संस्कृति में नाटक का उद्‌भव वेदकाल में माना जाता है । संस्कृत साहित्य में वह पूर्णावस्था या चरमावस्था पा चुका था । संस्कृत भाषा से प्राकृत और अपभ्रंश से होकर हिन्दी निकली,लेकिन इस क्रम में नाटक की गति अवरूध्द हो गयी । हिन्दी के आदिकाल एवं मध्यकाल में नाटक का पूर्णत: अभाव ही रहा । आज का हिन्दी नाटक आधुनिक युग की देन है । इसके पूर्व के हिंदी नाटकों में साहित्यिक मूल्य कम और तत्कालिक लोकरंजन अधिक था । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही हिन्दी नाटकों का सिलसिला आरंभ होता है ।

पूर्ववर्ती काल में नाटकों के अभाव के अनेक कारण हैं । एक तो तत्कालीन उपलब्ध साहित्य की भाषा पद्यमय अधिक रही, जिससे गद्य-पद्य मिश्रित नाट्य रचना पर बंधन पड गये ? दूसरे तत्कालीन राजनैतिक एकता का अभाव,छोटे राज्य, गृहकलह,सतत युध्द एवं आक्रमण से अशांत वातावरण में नाट्य निर्मिति के लिए आवश्यक तत्व क्षीण हो चुके थे । तीसरे मुसलमान शासकों के मूर्तिपूजा विरोधी होने से इस शासन काल में नाटक का उदय और विकास नहीं हो सका । चौथे संस्कृत नाट्य परंपरा टूट चुकी थी । और रंगमंच न के बराबर हो चुका था । इन्हीं

---

५ डॉ.श्रीपती शर्मा - हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव- पृ.२,६ ।

कारणों से भारतेन्दु पूर्व काल में नाटकों का प्राय: अभाव रहा ।

प्रारम्भिक नाटक --

यद्यपि डॉ.दशरथ ओझा ने अपने शोध प्रबन्ध कवि अब्दुल रहमान लिखित 'संदेशशासक' के आधारपर हिन्दी नाटक का प्रारंभ तेहरवीं शताब्दी से मानते हुए यही निर्णय व्यक्त किया हो कि हमारी सम्मति में यह रासक पूर्णतया विकसित नाटकों के प्रारम्भिक काल का वह रूप है जिस में श्रव्य काव्य अभिनय कला की सहायता से दृश्य काव्य में परिणित हो रहे हैं । बहुरूपियों से प्रदर्शन होने का उल्लेख इस बात का प्रमाण है ।[६] परन्तु विचार पूर्वक देखने पर हिन्दी नाट्य साहित्य को आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी से मानना ही उचित जान पडता है ।

यों तो उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व की जो नाट्य सामग्री उपलब्ध है उसके आधार पर विद्यापति प्रथम नाटककार माने जा सकते हैं,क्योंकि उनके दो नाटक 'रुक्मीणि हरण' और 'पराजिता हरण' प्रसिध्द हैं । इन नाटकों का रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी है और चौदहवी शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक नाटकों के नाम पर विद्यापति की इन दो कृतियों के अतिरिक्त 'केशवदास का' विज्ञान गीतो, कृष्ण जीवन का' करुणभरण' हृदयराम का' हनुमन्नाटक' बनारसिदास का' समयसार', यशवन्त सिंह द्वारा अनुदित 'प्रबोध चन्द्रोदय', नेवाज कवि का' शकुन्तला नाटं', देव का' देवमाया प्रपंच' आलम का 'माधवानल कामकन्दला' महाराज विश्वनाथ सिंह का' आनन्द रघुनन्दन' ,मंजु का' हनुमान नाटक', मसाराम का' रघुनाथ रूपक',' कृष्ण शर्मा का' रासलीला विहार नाटक' हरिराम का' जानकी रामचरित्र नाटक', बाजवासीदास का 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदी कुछ थोडी-सी नाट्य कृतियाँ ही उपलब्ध होती हैं ।[७]

---

६ आ.दुर्गाशंकर मिश्र - हिन्दी का इतिहास - पृ.१९३ ।

७ वही पृ.१९३ ।

यहाँ यह स्मरणीय है कि उक्त कृतियों को नाटक न मानकर परमात्मक वर्णन कहना ही अधिक युक्तिसंगत होगा । क्योंकि इनमें अधिकांशता: या तो रामायण और महाभारत की कथाओं का पध्यात्मक वर्णन या अनुवाद है । नाटयाभिनय का उनमें कोई प्रयास नहीं है ।

हिन्दी का प्रथम नाटक --

अँग्रेजों के शासन काल में पाश्चात्य प्रभाव बढने लगा और संस्कृत साहित्य का अध्ययन भी नये सिरे से ऊपर उठा । इसी काल में बाबू गोपालचन्द्र गिरिधर-- दासने `नहुष` नामक नाटक की रचना संवत १८५७ में की[८]। `नहुष` नाटक की कथा सक्षेप में इस प्रकार है - पुत्र के वध के उपरान्त ब्रह्महत्या के भय से इंद्र का स्वर्ग लोक छोडकर मानसरोवर में जाकर छिप रहना, रिक्त सिंहासन पर पृथ्वी के राजा `नहुष` का देवराज बनाया जाना, गर्व के कारण देवेश के आसन से नहुष का पतन तथा पूर्व इंद्र का ब्रह्महत्या से मुक्त होकर पुन: इन्द्रत्व प्राप्त करना, बस इतनीही कथा है । इसके प्रमुख पात्र नहुष तथा देवगुरू ब्रहस्पति हैं । नहुष का चरित्र बहुत उच्च स्तर का है । प्रतिशोध एवं षड्यंत्र का चित्रण इसमें दिखायी देता है ।

इसमें नाट्य नियमोंका पालन भी हुआ है, भाषा, पात्रों के नाम आदि सुगम हैं तथा दृश्य-परिवर्तन बहुत शीघ्र नहीं होते हैं । इन्हीं कारणों से इसे आधुनिक काल के प्रथम हिन्दी नाटक के रूप में स्वीकार सकते हैं ।

(१) भारतेन्दु युगीन नाटय-साहित्य --

वास्तविक अर्थ में हिन्दी नाटय-साहित्य के जन्मदाता होने का श्रेय `भारतेन्दु` को है । उन्होंने सन १६६८ इ.स.में संस्कृत के `विधासुन्दर` का अनुवाद प्रकाशित किया । विधासुन्दर की कथा बंगाल में बहुत प्रसिध्द थी । उसी की छाया लेकर उन्होंने अनुवाद किया था । उसमें विधा और सुन्दर की प्रेमगाथा का

---

८ आ.दुर्गाशंकर मिश्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.१९३ ।

अत्यन्त सुन्दर और रोचक वर्णन है । इसके अनुवाद के बाद उन्होंने सामाजिक,धार्मिक, विशुध्द साहित्यिक,पौराणिक और राष्ट्रीय एवं राजनीतिक नाटकों की रचना की । `श्री चन्द्रावली नाटिका` (सन १८७६ इ.स.),`विषयस्य विषयौघम` (सन १८७६).,`भारत की दुर्दशा ( सन १८४४ ) और` नीलदेवी` ( सन १८८१ ) उनकी मौलिक रचनाएँ हैं ।`प्रमयोगिनी` और` सती प्रताप` ( सन १८७६ ) अपूर्ण रचनाएँ हैं । सन १८९२ ई.में राधाकृष्ण ने` सती प्रताप` पूरा किया । सन १८८४ इ.में भारत जननी` का तृतीय संस्करण प्रकाशित हुआ । उसकी रचना बंगाल के `भारतमाता` के आधारपर हुई ।

अपने संस्कृत,अंग्रेजी नाट्यशास्त्रों के अध्ययन के आधारपर उन्होंने `( भारतेन्दु ने ) हिन्दी के नाटयशास्त्र` नाटक` (सन १८८३) का निर्माण किया । इस ग्रन्थ में उन्होंने नाट्यशास्त्र का देश,काल और अवस्था के अनुसार परिवर्तित दशा के प्रकाश में अध्ययन प्रस्तुत किया है । प्राचीन आचार्यों के नियम उन्होंने ग्रहण किये हैं । परन्तु अंध भक्ति के साथ नहीं । कहने का तात्पर्य यह है कि परिवर्तीत समय के अनुसार उन्होंने पाश्चात्य नाट्यशास्त्र का उपयोग किया है । बहुत से अप्रयुक्त प्राचीन नियन तोड देने और प्राचीन नियमों को ग्रहन करने में भी उन्होंने कोई हानि नहीं समझी ।` संस्कृत में भरत मुनि के नाटयशास्त्र का जो स्थान है वही हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक का है ।`[१]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं । पहला सामाजिक और राजनैतिक नाटक,जैसे -- भारत दुर्दशा ,नीलदेवी आदि । दूसरा पौराणिक नाटक,जैसे -- सती प्रताप । तीसरे वे नाटक जीनका मूलाधार प्रेमतत्व है,जैसे -- चन्द्रावली । ये तीन भाग तीन उद्गमों के समान हैं जिनमें विभिन्न नाटकीय धाराएँ प्रवाहित हुई - सामाजिक,राजनीतिक,पौराणिक और प्रेम संबंधी ।

(१) `भारतेन्दु काल के नाटकों की रचना का मूल उदेदश्य मनोरंजन के साथ ही जनमानस को जागृत करना और उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न करना था । फलस्वरुप इनमें सत्य,न्याय,त्याग,उदारता आदि मानविय मूल्यों के प्रति अस्था उत्पन्न करने प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम जगाने अनुकरणीय पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों के प्रति समाज को आकृष्ट करने और नवीनता की आँधी से समाज सुरक्षित

१ आ.दुर्गाशंकर मिश्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास,पृ.१९४ ।

रखते हुए उसका सुधार एवं परिष्कार करने पर अधिक बल दिया गया है।" [१०]

वैदिक हिंसा हिंसा न भवति, विषस्य-विषमौषधम्, चंद्रवली, भारतदुर्दशा, नीलदेवी, अंधेरनगरी - ये भारतेन्दु के कुछ महत्व के नाटक हैं। उनके नाटकों में गीतों का प्रयोग भी हो चुका है। `भारतदुर्दशा` में देशप्रेम के साथ-साथ भारत की दुर्दशा का भी वर्णन मिलता है। `वैदिक हिंसा-हिंसा न भवति` में पुरानी रूढियों पर आघात करने के लिए हास्य व्यंग्य का उन्होंने सहारा लिया। `अंधेरनगरी` में अव्यवस्थित राज्यपर गहरी चोट है। `विद्यासुन्दर` पाखंड-विध्वंस, कर्पूर मंजिरी, मुद्राराक्षस, सत्यहरिश्चन्द्र, भारत जननी, ये उनके अनुदित नाटक रहे।

(२) भारतेन्दु के नाटकों में सामाजिक सुधार का तथा राष्ट्रीय भावना का स्वर प्रबल था। विदेशी शासन से पीडित कुचली हुई जनता आर्थिक, सामाजिक समस्या, वर्गसंघर्ष, समाज की विपन्नावस्था के मार्मिक चित्र इस युग के नाटककारों ने खीचें हैं।

(३) इस युग के नाटकों में देवी-देवता, राक्षस, गंधर्व आदि पौराणिक पात्र कम होते गये और उनका स्थान मानवीय चरित्र लेने लगे। इस युग में बौध्दिकता का आविर्भाव हुआ। इस काल में अंग्रेजी राज्य की नींव दृढ होती गयी, अत: आधुनिक विचारधारा रीतिरिवाज, रुढियों परंपराओं और अंधविश्वासों की आलोचना नये पैमानेपर शुरु हुई। नये विचारों का पुनरुत्थान हुआ। पद्य की अपेक्षा गद्य की प्रचुरता बढ गयी। ब्रज भाषा के स्थानपर खडीबोली की स्थापना हो गयी।

(४) समाज सुधार तथा राष्ट्रवादी विचारों को लेकर नाटक लिखे गये। `भारत दुर्दशा`, `अंधेरनगरी` आदि नाटकों में युगजीवन का यथार्थ अभिव्यक्त हुआ। शैली की दृष्टि से आदर्शवादी, यथार्थवादी, स्वच्छंदतावादी दृष्टि रही। भारतेन्दु ने नाटक को यथार्थ स्वरुप प्रदान किया हास्य और व्यंग्य से उनके नाटक रोचक बन गये। कथावस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, संवाद, भाषाशैली, देशकाल, उद्देश्य आदि तत्वों की दृष्टि से उनके नाटक आधुनिक रहे। इन नाटकों की कलात्मक कसौटी के कारण ही भारतेन्दु को `आधुनिक हिन्दी नाटकों का जनक` माना जाता है।

---

१० सं.डॉ.नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.४७७।

गणपतिचन्द्र गुप्त ने भारतेन्दु के बारेमें सही लिखा है --" जिसने नाट्य शास्त्र के गंभीर अध्ययन के आधारपर नाट्य कला पर सैध्दांतिक आलोचना लिखी हो जिसने प्राचीन और नवीन,स्वदेशी और विदेशी नाटकों का अध्ययन व अनुवाद किया हो, जिसने वैयक्तिक,सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर अनेक पौराणिक,ऐतिहासिक और मौलिक नाटकों की रचना की हो और जिसने नाटकों की रचना ही नहीं,अपितु उन्हें रंगमंचपर खेलकर भी दिखाया हो इन सब विशेषताओं से संपन्न नाटककार हिन्दी में ही नहीं समस्त विश्व साहित्य में केवल दो चार मिलेंगे और उन सब में भारतेन्दु का स्थान उन सब से ऊँचा होगा ।" [११]

इस युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार यदि भारतेन्दु रहे तो भी इस काल में अन्य लेखकों द्वारा भी व्यंग्य विनोदपूर्ण प्रहसनों की भी सुन्दर सृष्टि हुई । इन नाटकों में सामाजिक जीवन की असंगतियों तथा धर्म के मिथ्या आडंबरों पर तीखा व्यंग्य कसा मिलता है । बालकृष्ण भट्ट का ' शिक्षा दान', प्रतापनारायण मिश्र का ' कलिकौतुक' और राधाचरण गोस्वामी का' बूढे मुँह मुँहासे' आदि प्रहसन है । इनमें हास्य-व्यंग्यपूर्ण शैली में धार्मिक पाखंडों का खण्डन हुआ है और सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किये गये हैं । प्रतिकवादी नाटकों में कमलाचरण मिश्र कृत ' अद्भुत नाटक' रतनचंद का' न्यायसभा' और शंकरानंद कृत' विज्ञान' उल्लेखनीय नाटक हैं । इन नाटकों में भावों एवं मनोवृत्तियों को ही पात्रों का रूप दिया है ।

सामाजिक नाटकों में अंबिकादत्त व्यास कृत' भारत सौभाग्य' ,राधाकृष्ण दास कृत' दु:खिनीबाला' गोपालराम गहमरी कृत' देशदेश' काशीनाथ खत्री कृत ' विधवा विवाह' आदि उल्लेखनीय नाटक हैं । इन नाटकों में देश की तत्कालीन दुर्दशाका चित्र मिलता है ।

इस युग में राधाचरण गोस्वामी का' अमरसिंह राठोड' और राधाकृष्णदास का' महाराणा प्रताप' आदि महत्वपूर्ण ऐतिहासिक नाटक हैं ।

---

११ डॉ.शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ -पृ.५९७ ।

(५) इस काल के अनुदित नाटक भी बहुत हैं। ये अनुवाद मुख्यत: संस्कृत, बँगला और अँग्रेजी भाषाओं से किये गए हैं। इस दिशा में स्वयं भारतेन्दु ने मार्गदर्शन किया। इन अनुवादोंसे हिन्दी नाटककारों को नयी दिशा मिली तथा विस्तृत आयाम भी मिले। देवदत्त तिवारी ने `उत्तरामचरित्र` का नंदलाल, दुबेजी ने `अभिज्ञान शाकुतल`, लाला सिताराम ने `मालविकाग्निमित्र` तथा `मृच्छकाटिक` आदि के अनुवाद किये। बँगला से हिन्दी में अनुवाद करनेवालों में रामकृष्ण वर्मा का नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। अँग्रेजी के शेक्सपियर के नाटकों के भी सर्वाधिक अनुवाद हुए।

(६) शैली की दृष्टि से इस काल के भारतेन्दु सहित सभी नाटककारों ने संस्कृत नाटकों की परंपरा का पालन किया। नांदीपाठ, भरतवाक्य अंकावतार आदि का प्रयोग इसका स्पष्ट द्योतक है। चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी इनमें दिखाई देती है। इन नाटकों में कथोपकथन अपेक्षाकृत लम्बे है। उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति भी उनमें झलकती है। पद्य के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।

एक बात यहाँ महत्वपूर्ण है कि इस युग का नाटक जनजीवन के बहुत समीप रहा और तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण करता रहा।

(२) द्विवेदी युगीन नाट्य साहित्य --

भारतेन्दु के पश्चात और प्रसाद युग के आरंभ के बीच जो कालखण्ड आता है, उसमें हिन्दी में अनेक नाटकों की रचना हुई लेकिन इस काल में नाटकों की शैली अथवा शिल्प में कोई खास परिवर्तन नहीं हुए।

भारतेन्दु युग में नाटक जनजीवन के अत्यंत निकट रहा, लेकिन द्विवेदी युग में यह निकटता बहुत कम हुई। द्विवेदी जी तथा इस काल के साहित्यिक भाषा के परिष्करण का महत्वपूर्ण कार्य करते रहे, अत: मौलिक नाटकों का निर्माण बहुत्मतासे न हो सका। इस काल में अनुवादों की अधिकता रही। पौराणिक संतचरित्रोपर आधारित सामाजिक तथा प्रेमलिला पूर्ण नाटकों की निर्मिति होती

रही । भारतेन्दु ने निर्माण की प्रहसनों की परंपरा इस काल में भी रही । बद्रिनाथ भट्ट के 'मिस-अमेरिका', 'विवाह विज्ञापन' ये प्रहसन विषयों की नवीनता को प्रस्तुत करते हैं ।

इस काल में ऐतिहासिक नाटक भी रचे गए जिनमें प्रेमचंद का 'कर्बला' मिश्रबन्धुओंका 'शिवाजी' तथा जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी जी का 'तुलसीदास' आदि नाटकों का समावेश होता है ।

इस काल के नाटककारों में नारायण प्रसाद 'बेताब', राधेश्याम, कथावाचक-आगा हश्र काश्मीरी (शेक्सपीयर के नाटकोंपर आधारित नाटकोंकी रचना करनेवाले) जे.पी.श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट, तुलसीदास शैदा, हरिकृष्ण जौहर आदि प्रमुख नाम हैं ।

(३) प्रसादयुगीन नाट्य - साहित्य --

हिन्दी नाट्य साहित्य के उक्त-हासकालीन समय में प्रसाद ने साहित्यजगत में प्रवेश किया । डॉ.गुलाबराय का कहना है" प्रसाद जी स्वयं एक युग थे जिन्होंने हिन्दी नाटकोंमें मौलिक क्रांति की । उनके नाटकों को पढ कर लोग द्विजेन्द्रलाल के नाटकों को भूल गये । वर्तमान जगत के संघर्ष और कोलाहलमय जीवन से ऊबा हुआ उनका -हृदयस्थ कवि उनकी स्वर्णिम आभा से दीप्त दूरस्थ अतीत की ओर ले गया । उन्होंने अतीत के इतिवृत में भावना का प्रभु और दार्शनिकता का रसायन घोलकर समाज को एक ऐसा पौष्टिक अवलेह दिया जो -हास की मनोवृत्ति को दूर कर उसमें एक नई सांस्कृतिक चेतना का संचार कर सके । उनके नाटकों में द्विजेन्द्रलाल राय की सी ऐतिहासिकता और रवि बाबू की सी दार्शनिकता पूर्ण भावुकता के दर्शन होते हैं ।" [१२]

प्रसादजी ने अपने नाटकों में भारत के शक्तिवैभव की अपेक्षा उसकी नैतिक सपन्नता और विशालता में अधिक उभार लाकर देशवासियोंके मस्तक को गौरव

---

१२ आ.दुर्गाशंकर मिश्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.१९५ ।

12700
A

से ऊँचा कर दिया है। प्रसाद जी इतिहास और पुरातत्व के पण्डित थे। उन्होंने बौध्दकालीन भारत का विशेष अध्ययन किया और इसी कारण वे तत्कालीन वातावरण, राजकीय शिष्टता और शासन व्यवस्था के चित्रण में विशेष रूप में समर्थ हुए हैं। महाबलाधिकृत, परम भट्टारक, अश्वमेघ पराक्रम, दंडनायक, न्यायाधि- - करण नाझीर, गरूडध्वज आदि शब्द इस काल में भी प्राचीन सभ्यता को सजीव बना देते हैं।

प्रसादजी ने वातावरण की सृष्टि ही नहीं की वरन उसको सार्थकता प्रदान करने वाले सजीव और सबल तथा कोमल और संगीतमय स्त्री पात्रों को भी सृष्टि की है, जो अपनी ममता की दृढता और त्याग के तेज में सबलों की आभा को फकी कर देते हैं। उनके स्त्री पात्रों में बाह्य संघर्ष के साथ अन्तर्द्वन्द्व के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। विचार सामग्री और जीवन मीमांसा की दृष्टि से प्रसाद जी के नाटक बडे संपन्न हैं। प्राचीन वातावरण के भीतर ही प्रसादजी ने प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता से ऊपर उठकर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से प्रकाश डाला है।

प्रसाद के नाटकों के संबंध में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके नाटक न तो सुखान्त हैं और न ही दु:खान्त। उनके नाटक के अन्त में नायक विजयी होकर भी वैराग्य की भावना से प्रभावित रहता है। ऐसे वैशिष्टयपूर्ण अंत को `प्रसादान्त` संज्ञा से अभिहित किया जाता है। प्रसाद ने प्रथमबार हिन्दी में एकांकी तथा गीति नाटय के तंत्र का प्रयोग किया है।

प्रसाद ने अपने जीवन काल में निम्नस्थ नाटकों की रचना की है। उनके नाटकों में `चन्द्रगुप्त`, `स्कंदगुप्त`, `अजातशत्रु`, `विशाखा`, `राजश्री` ये ऐतिहासिक तो `जनमेजय का नागयज्ञ` पौराणिक विषय को लेकर है। `सज्जन`, `कल्याणी परिणय`, `प्रायश्चित`, तथा `एक घूँट` ये एकांकी नाटक हैं। `करुणालय`, `गीतिनाटय तो `कामना` प्रतीक नाटक है। ऐतिहासिक कथावस्तु के होते हुए भी उनका `ध्रुवस्वामिनी` समस्यामूलक नाटक है।

अपने नाटकों के लिए ऐतिहासिक कथानकों का चुनाव करने के संबंध में जयशंकर प्रसादजी ने `विशाखा` की भूमिका में लिखा है - `मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराना है,

जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।" [१३] उनके ऐतिहासिक नाटकों में भारतीय संस्कृति तथा इतिहास के गौरवपूर्ण तथ्यों का प्रकाशन हुआ है।

प्रसाद के नाटकोंपर शैली की दूरूहता, भाषा की क्लिष्टता तथा दार्शनिकता आदि आरोप लगाये जाते हैं। साथ में उनके नाटकों की अभिनेयता की सफलता के संबंध में आपत्ति उठाई जाती है। लेकिन सत्य तो यह है कि नाटक में वातावरण की निर्मिति के लिए प्रसाद को इस प्रकार की शैली का प्रयोग करना पडा था। साथ ही प्रसाद के नाटक तत्कालीन रंगमंच की असुविधाओं के कारण लगातार नहीं खोले गए होंगे, लेकिन आज के विकसित रंगमंच तंत्रों का आधार लेकर उन्हें जरूर खेला जा सकता है। अत: अभिनेयता संबंधी शंका भी निराधार सिध्द होती है।

प्रसाद कालीन अन्य नाटककार --

प्रसाद के समकालीन नाट्य सृजन करने वाले लोगों में हरिकृष्ण प्रेमी, सुदर्शन पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' उदयशंकर भट्ट, गोविन्द वल्लभ पंत, सेठ गोविन्द दास, बद्रीनाथ भट्ट, जी.पी.श्रीवास्तव, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, मिश्र बन्धु, प्रेमचन्द, रामनरेश त्रिपाठी, वियोगी हरी तथा माधव शुक्ल आदि महत्वपूर्ण हैं।

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों का प्रभाव ग्रहण करके हरीकृष्ण प्रेमी (रक्षाबंधन, शिवा-साधना, शपथ), उदयशंकर भट्ट (सिन्धपतन, विक्रमादित्य), गोविन्दवल्लभ पंत (राजमुकुट) सेठ गोविन्ददास (हर्ष) ने ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। सामाजिक समस्या मूलक नाटकोंकी निर्मिति भी इस काल में हो रही थी। पश्चिमी नाटककार इब्सन और शॉ से प्रभावित होकर लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'सिन्दुर की होली,'' सन्यासी','राक्षस का मंदिर','मुक्ति का रहस्य' आदि नाटकों में भारतीय नारी की चिरन्तन समस्याओं का चित्रण किया

---

१३ डॉ.जयशंकर प्रसाद 'विशाखा' - (भूमिका)।

है । बद्रीनाथ भट्ट द्वारा रचित कई नाटक एवं प्रहसन है,जैसे --` कुरुवनदहन` (सन १९१२)`, चन्द्रगुप्त ( सन १९१५ ),` चुंगी की उम्मीदवशि (सन १९१९), ` वेनचरित ( सन १९२१ ),` तुलसीदास (सन १९२२),` दुर्गावती ( सन १९२५), ` लबड्धोंधों (सन १९२६),` विवाह विज्ञापन ( सन १९२६ ) और ` मिस अमेरिकन` ( सन १९२९ ) आदि प्राप्त होते हैं ।*[१४] सुदर्शन प्रसाद युग के सफल नाटककार हैं ।` दयानंद` और` सिकंदर` ऐतिहासिक, अंजना` पौराणिक ` धूपछाँह` समस्याप्रधान तथा` आनरेरी मजिस्ट्रेट` उनके हास्यात्मक रूपक हैं । ` माखनलाल चतुर्वेदी कृत` कृष्णार्जुन युध्द` नाटक अपनी कलात्मक श्रेष्ठता के कारण हिन्दी साहित्य में एक गौरवपूर्ण स्थान बनाया हुआ है । मैथिलिशरण गुप्त जी की तीन रचनाएँ प्राप्त होती हैं ।` चंद्रहास (सन १९१९),` तिलोतमा` (सन १९१६) और` अनघ ( सन १९२५ ) । मिश्रबन्धुओं द्वारा रचित ` नेत्रोन्मीलन`,` पूर्वभारत` और` उत्तर भारत` ,प्रेमचंद रचित` संग्राम`,`कर्बला` और` प्रेम की वेदी` इनका समस्यामूलक नाटक है जिसमें विवाह की समस्या को लिया गया है ।*[१५] रामनरेश त्रिपाठी द्वारा निर्मित` जयन्त`,` प्रेमलोक`, ` बफाती चाचा`,` अजनबी` `, पैसा-परमेश्वर` तथा` कन्या का तपोवन : ससुराल` आदि मिलते है । इन नाटककारों के अतिरिक्त विश्वम्भरनाथ कौशिक कृत` भीष्म`, द्वारका प्रसाद गुप्त कृत` अज्ञातवास` ,चन्द्राज भण्डारी कृत ` सिध्दार्थ कुमार`,` जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी कृत` मधुर मिलन` और` तुलसीदास लक्ष्मणसिंह कृत` गुलामी का नशा` आदि नाटकों का निर्माण इस काल में हुआ हैं । प्रसाद जी की प्रतिभा तथा नाटयकला के दर्शन तो इन नाटककारों में नहीं होते लेकिन अपने युग की विशेषताओं का निर्वाह इनके नाटकों में अवश्य दिखाई देता है ।

---

१४ डॉ.शान्ति मलिक : हिन्दी नाटकों की शिल्प विधि का विकास - पृ.१८४ ।

१५ वही पृ.१९५ ।

प्रसाद कालीन नाटककारों की यह विशेषता रही कि इनके नाटकों में तत्कालीन यथार्थ के चित्रण के साथ आदर्शवाद भी जुडा दिखाई देता है । इस काल में प्रहसनों की अपेक्षा गंभीर चिंतनपरक नाटयकृतियोंका निर्माण होता रहा । विश्व की अनुपम नाटयकृतियों का अनुवाद करके हिन्दी साहित्य को समृध्द बनाने का कार्य इस काल में भी चलता रहा । इस काल में रंगतंत्र संबंधी विविध प्रयोगों को अपनाया जाने लगा । इस दृष्टि से यह कालखण्ड मूलभूत परिवर्तन का कालखण्ड माना जाता है ।

प्रसादोत्तर युगीन नाटय साहित्य (स्वतंत्रतापूर्व कालखण्ड)

प्रसाद के कालखण्ड में जिन विविध नाटय रूपों को प्रथम बार अपनाया गया वे सभी इस कालखण्ड में विकसित होते रहे । गीति-नाटय, रेडियोनाटक आदि विविध प्रकारों को प्रगत रूप इसी कालखण्ड में मिला । इस काल में मुख्यत: ऐतिहासिक, पौराणिक, समस्या-मूलक तथा राजनैतिक नाटकों का ही निर्माण हुआ । इस समय के नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, उपेंद्रनाथ अश्क, वृंदावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री जगदीशचन्द माथुर, विष्णु प्रभाकर ने किसी का प्रभाव ग्रहण करके नहीं बल्कि स्वतंत्र रूप से नाटयरचना की है । बहुमुखी प्रतिभा का उदय तथा विकास इस युग की सबसे अहम् विशेषता है । इस काल में राष्ट्रीय भावना के कारण ऐतिहासिक नाटक लिखे गये । (उदा. हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक) इस काल में प्रथम बार नाटक में मध्यवर्गीय समस्याओं का यथार्थ चित्रण हुआ । अश्क जी के नाटक इसी बात के उदाहरण हैं । पाश्चात्य नाटकों के प्रभाव से शिल्प और विषय दोनों में परिवर्तन आए । नाटक में यथार्थ को ज्यादा स्थान मिलने लगा । भाऊकता की जगह बौध्दिकता ने ली । रंगमंच और अभिनय संबंधी प्रयगों की संख्या बढती गयी । इस काल में हिन्दी नाटक सच्चे अर्थ में विकास की ओर अग्रसर होता रहा ।

जयनाथ नालिन के शब्दों में प्रसादयुग के बाद हिन्दी-नाटकों का नवयुग आरम्भ होता है ।[१६] इस युग में नाटय-साहित्य विविध रूपों में विकसित

१६ आ.दुर्गाशंकर मिश्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.१९६ ।

होता गया । पौराणिक,सामाजिक,ऐतिहासिक नाटकों के साथ समस्या नाटक और राजनैतिक नाटक भी लिखे जाने लगे ।

इस युग में उल्लेखनीय बात यह हुई कि नाटककारों का ध्यान प्राचीन से हटकर वर्तमानपर अधिक गया । वर्तमान जीवन का दैनिक,आर्थिक,सामाजिक समस्याओं को विचार प्रधान ढंग पर सुलझाने में नाटककार प्रवृत्त हुए । राजा-महाराजाओंकी जगह मजदूर,किसान,क्लर्क,अध्यापक,व्यापारी,सुधारक,नेता,वकील आदि को नाटकों के नायक के रूप में स्थान मिला । इस युग के नाटकों पर इब्सन,शॉ तथा गार्ल्सवर्दी का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है । नाटक काल्पनिक जीवन से हटकर यथार्थ की भूमि पर आया । पात्र ,चरित्र चित्रण,भाषा,वेष-भूषा सभी में यथार्थ चित्रण की अभिरूचि इस युग की विशेष प्रवृति है ।

यथार्थवादी प्रगतिशील समस्या प्रधान नाटक लिखने का सर्व प्रथम श्रेय लक्ष्मीनारायण मिश्र को है । `राजयोग`, `राक्षस का मन्दिर`, `संन्यासी`, `मुक्ति का रहस्य`, तथा `सिन्दूर को होली` लिखकर इन्होंने हिन्दी में नई धारा आरम्भ की । `राक्षस का मन्दिर`, `संन्यासी` में उन्मुक्त प्रेम की वकालत है । इसमें यथार्थ के चरणों पर मुक्त रूप से चुम्बनों की वर्षा की गई है । `सिन्दूर की होली` और `मुक्ति का रहस्य` में बहुत सुन्दर मनोवैज्ञानिक ढंग से अपराध स्वीकार करके पाप मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है । नारी समस्या को सुलझाने की आकुलता भी इन नाटकों में यत्र-तत्र मिलेगी । `संन्यासी` में भारत की दासता की समस्या भी ली गई है । मिश्रजी के नाटक विचार प्रधान हैं,फिर भी वे भावुकता से पीछा नहीं छुड़ा सके । छाया,बन्धन,अपराधी,दुविध:विकास, सेवापथ,अंगूर की बेटी और कमला इसी वर्ग के नाटक हैं ।

प्रसादोत्तर काल में तकनीक की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया । लक्ष्मीनारायण मिश्र ने प्राय: नाटकों में तीन अंक रखे हैं । अंक ही दृश्य हैं । नाटकों में विभिन्न दृश्यों की अदल बदल उन्होंने दूर की । यद्यपि कई नाटकों में उन्होंने काफि गड़बड़ भी की,दृश्य बदले,पर दृश्य संख्या न देकर पट परिवर्तन के द्वारा दृश्य-बदल गया है । बाद के नाटकों में शुध्द रूप में तीन अंक तीन दृश्य

बनकर आए । इनके नाटकों में गीतों की परम्परा भी विलीन हो गई । इनके तीन अंकी नाटकों का अभिनय सफलता और सरलता से हो सकता है । इस युग के नाटकों में संकलनतंत्र का भी ध्यान रखा गया है । अब नाटकों का आकार भी छोटा रहने लगा है । तीन चार अंक में नाटक पूर्ण हो जाता है । उसका अभिनय भी ढाई घण्टे से अधिक समय नहीं लेता ।

स्वातंत्र्योत्तर कालखण्ड और आधुनिक नाटक --

स्वातंत्र्यपूर्व काल में नाटक के जिन विविध रूपों का निर्माण हुआ था, इस काल में वे पूर्ण रूप से विकास की ओर अग्रेसर होते रहे । स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद हिन्दी नाटकों में अधिक विविधता, मौलिकता एवं परिष्कार आ गये । नाटकों में स्वातंत्र्यपूर्व कालीन परंपरा का पालन करते हुए भी अधिक व्यापकता आ गयी । इस काल में पौराणिक, ऐतिहासिक, जीवनपरक, समस्यामूलक एकांकी, गीति-नाट्य, रेडियोनाटक, सिने नाटक, प्रतीकात्मक नाटक आदि सभी प्रकार के नाटक लिखे गये ।

उदयशंकर भट्ट जी ने पौराणिक नाटक लिखे । वृंदावनलाल वर्मा, लक्ष्मी - नारायण मिश्र ने ऐतिहासिक नाटक लिखे । जगदिशचन्द्र माथुर जी ने कोणार्क में नवीन तंत्र अपनाया । सेठ गोविंददास ने 'भारतेन्दु' नामक जीवनीपरक नाटक लिखा । अश्क जी ने 'पैतरे', 'अलग अलग रास्ते' आदि समस्या मूलक नाटक लिखे । डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'स्वप्नचित्र' और भगवतीचरण वर्मा ने 'वासवदता का चित्रलेख' सिनेमा नाटक लिखा । धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' गीतिनाट्य होते हुए भी नाटयसाहित्य में नया मोड पैदा करनेवाला सिध्द हो गया है । एकांकी का विकास तो इस काल में सर्वाधिक मात्रा में हो गया । लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'मादा कैक्टस' प्रतीकात्मक नाटक है ।

स्वंतत्रता के बाद आर्थिक, पारिवारिक वर्ग विकृह की समस्या को साहित्य में स्थान मिलने लगा । फ्रायड के आधार पर मानसिक उलझनों का चित्रण बढ गया । नवीन मूल्यों का पारंपारिक मूल्यों के साथ संघर्ष अभिव्यक्त

होता रहा । ग्राम्य जीवन की तरफ ध्यान खींचा गया,तो शहर की समस्याएँ भी चित्रित हुई । शैली की दृष्टि से नृत्त छाया नाटक,एक पात्रीय नाटक,भाव नाट्य नेपथ्य से उद्घोषणा आदि नये प्रकार इस्तेमाल किये गए । विषय चेतना और कला की दृष्टिसे सर्वत: नवीनता आ गयी । नाटक पाठ्य से दृश्य अधिक हो गया यह इस युग की उपलब्ध है ।

(१) एकांकी नाटक --

संस्कृत नाटकों में एकांकियों के प्रकार पाये जाते हैं । फिर भी आज का एकांकी आधुनिक युग में बढते वैज्ञानिक प्रभाव के फलस्वरुप उत्पन्न हुआ है । पाश्चात्य साहित्यिक गार्ल्सवर्दी तथा शॉ के एकांकीयों के देखा देखी से हिन्दी में यह नवीन प्रवाह उत्पन्न हुआ है ।

प्रसाद ने एक छूँट द्वारा एकांकी का सूत्रपात किया । विभिन्न विद्वानों एक छूँट को आधुनिक ढंग का सर्वप्रथम हिन्दी एकांकी स्वीकार किया है ।[१७] बाद में इसमें विषय तथा तंत्र को लेकर विविध प्रयोग हुए हैं । राजकुमार वर्मा ने अनेकानेक एकांकियोंका सृजन करके उसे हिन्दी साहित्य में मान्यता प्राप्त करा दी । स्वतंत्रता के बाद एकांकियों का सृजन बडी मात्रा में होता रहा । आजकल जीवनगत व्यवस्था के कारण मनुष्य तीन अंकी नाटकोंकी अपेक्षा एकांकी को ज्यादा पसंद करता है ।

एकांकी नाटकों में सीमित समय के कारण शैली की चूस्ती तथा संवादों की मार्मिकता की आवश्यकता होती है । आज के एकांकी में प्रभावी संवाद रचना, विषय के चुनावों में सर्तकता तथा अभिनय आदि सभी बातोंपर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है । बीते तीन दशकों में एकांकी विषय और शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय उन्नति करता दिखाई देता है । आज के एकांकियों को रंगमंच के साथ पत्र-प्रतिकाएँ,रेडियो तथा दूरदर्शन आदि प्रसिध्दि माध्यम भी उपलब्ध हो गए हैं,अत: एकांकी नाटक आनेवाले हर दिन विकास की तरफ बढता जा रहा है ।

---

१७ आ.दुर्गाशंकर मिश्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.२२६ ।

(२) गीतिनाट्य --

इस प्रकार के नाटक में काव्य और नाटक का मिश्रण होता है। गद्य के द्वारा मनुष्य की सभी रागात्मक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति न होने के कारण पद्य की आवश्यकता होती है। आज के गीतिनाट्यों में अंर्तजगत् और बाह्यजगत का सूक्ष्म चित्रण, सजीव चरित्र निर्मिति भावपूर्ण पात्र काव्यमय संवाद, काव्य के लिए योग्य छंद विधान तथा भावदर्शी बिम्बों का प्रतीकोंका सम्यक प्रयोग करके भाषा-शिल्प की रचना आदि तत्वों को पाया जाता है।

गीतिनाट्य परंपरा का प्रारम्भ जयशंकर प्रसाद के 'करुणालय' से हुआ। प्रसाद के साथमैथिलिशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, हरिकृष्ण प्रेमी तथा सुमित्रानंदन पंत ने भी गीतिनाट्यों का निर्माण किया है। स्वतंत्रतापूर्व काल में गिरिजाकुमार माथुर, उदयशंकर भट्ट आदि के गीतिनाटय बहुत प्रसिध्द रहे। आधुनिक काल में डॉ. धर्मवीर भारती का 'अन्धायुग' गीतिनाट्य साहित्य क्षेत्र की एक विशेष उपलब्धि है। इसमें कवित्व और नाटय गुणों का सुन्दर योग हुआ है। महाभारतीय युध्द के कथानक को लेकर लिखे अन्धायुग में एक साथ काव्यमयता, रंगमंचीयता, ध्वनिप्रभाव, पौराणिकता और आधुनिकतम इतिहास यथार्थ और रहस्य आदि सभी का समीचीन मिश्रण पाया जाता है। अभिनेयता की दृष्टि से भी यह अनुपम कलाकृति सिध्द हो चुकी है। कवि दिनकर द्वारा लिखा 'गीतिनाटय 'उर्वशी' (सन १९६१) भी गीतिनाटय का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है।

(३) प्रतीक नाटक --

आज के नाटककारो में पाश्चात्य नाटक कारों से प्रभाव ग्रहण करके यथार्थ को प्रतीक व बिम्बों के सहारे प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति बढ रही है। पौराणिक अथवा ऐतिहासिक मिथकों के सहारे वास्तविकता को दर्शाने का प्रयास किया जाता है।

प्रसाद का 'कामना' तथा पंत का 'ज्योत्स्ना' प्रथम प्रतीकात्मक नाटक है। आधुनिक काल में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का 'सूर्यमुखी', मोहन राकेश के 'आषाढ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' तथा शंकर शेष के 'नयी सभ्यता

के नये नमूने', एक और द्रोणाचार्य तथा 'राक्षस' और जगदीशचन्द्र माथुर का 'पहला राजा' ये प्रतीक नाटक के ही उदाहरण हैं।

(४) रेडियो नाटक -

आधुनिक काल में ही रेडियो नाटक का विकास हुआ है। जिस तरह तकनीकी में सुधार होता गया उसी तरह रेडियो नाटक में भी सुधार आता गया। प्रथमत: यह देख लिया गया कि साहित्य की सफल कृतियोंको रेडियोद्वारा भली-भाँति प्रसारित किया जा सकता है, सिर्फ थोडे बहुत संशोधन परिवर्तन की जरूरत होती है। लेकिन वास्तव में अत्याधिक सफल नाटक वही थे, जो विशेष रूप से रेडियो के लिए लिखे गए थे। हरिश्चन्द्र खन्ना के अनुसार रेडियो नाटक का मूलभूत सिध्दान्त यह है -- " घटना प्रधान नाटक की अपेक्षा विचार प्रधान या वातावरण प्रधान नाटक रेडियो के लिए अधिक उपयुक्त, अधिक सफल और प्रभावोत्पादक होता है। कारण यह है कि अरूप और सूक्ष्म जितनी सफलतासे रेडियोद्वारा प्रसारित हो सकता है, उतना रूपायत और स्थूल नहीं।"[१८] इसी सिध्दान्त को ध्यान में रखकर कुछ नाटककारोंने विशेष रूप से रेडियो नाटक रचे हैं। हिन्दी के प्राय: सभी पुराने नये नाटककार किसी न किसी समय रेडियो के लिए नाटक, एकांकी, रूपक लिखते आये हैं। अनेकानेक विषयोंको लेकर इन्होंने रेडियो नाटकों का सृजन किया है। उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, रामकुमार वर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर, लक्ष्मीनारायण लाल, रामवृक्ष बेनीपुरी, विष्णु प्रभाकर, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि साहित्य कारों के अनेक नाटक आकाशवाणी से प्रसारित हो चुके हैं।

हास्य व्यंग्य पूर्ण रेडियो नाटक निर्माण करनेवालों में प्रभाकर माचवे, अमृतलाल नागर, शौकत थानवी, जयनाथ नलिन, राजेन्द्रसिंह बेदी, कृष्णचंद्र आदि की रचनाएँ सराहनीय हैं।

---

१८ हरिश्चन्द्र खन्ना - रेडियो नाटक - पृ.१०।

आकाशवाणी के राष्ट्रीय कार्यक्रम में प्रसारित होनेवाले नाटकों को देश के कोनो-कोनो तक एकसाथ पहुँचाया जाता है। नाटक के साथ नाटक कार का नाम भी दूर तक परिचित होता है। रेडियो प्रसारण का यह एक वैशिष्ट्य कहा जाएगा

रेडियो प्रसारणों में जिनके नाटकों को बार-बार सुना जाता है,उनमें प्रमुख नाम हैं -- राजेन्द्रसिंह बेदी,(कार की शादी,पाँच की मोच) ,सहादत हसन मंटो (जेब कतरा,रणधीर पहलवान तथा नेपोलियन की मौत आदि) डॉ.शंकर शेष के नाटक ' खजुराहो का शिल्पी ' को भी राष्ट्रीय प्रसारण में सभी भाषाओं में एक साथ प्रसारित किया गया था। आकाशवाणी का यह नवीनतम प्रयोग अत्यंत सफल सिध्द हुआ था।' त्रिभुज का चौथा कोण ' नामक एकांकी की रचना भी डॉ.शेष ने रेडियो प्रसारण के उद्देश्य से ही की थी।

हमारे देश में दो दशकों से दूरदर्शन का प्रसार बडी मात्रा में हुआ है। आज सुदूर ग्रामांतिक प्रसार का यह माध्यम पहुँच चुका है। हमारे देश में नाटक के प्रचार और प्रसार हेतु नाटककारों द्वारा इस माध्यम का भी विचार किया गया है। हिन्दी के अनेक नाटक,जो साहित्यिक और रंगमंचीय दृष्टि से सफल सिध्द हुए हैं। दूरदर्शन पर प्रदर्शित हो चुके हैं।

इसके साथ ही आज के कुछ नाटककार केवल ' कैमरे ' को दृष्टि में रखकर नाटकोंकी रचनाएँ करने लगे हैं। रेडियो की अपेक्षा यह प्रसार माध्यम अधिक महत्वपूर्ण है,क्योंकि इसमें ध्वनि के साथ अभिनय भी जुड जाता है। पात्रों के भावों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण क्लोज अप तंत्र द्वारा किया जा सकता है। अत: दूरदर्शन नाटक रेडियो नाटक की अपेक्षा नाटककार और अभिनेता दोनों की कसौटी सिध्द हुआ है। अब आये दिन दूरदर्शन पर नवनवीन नाटक,एकांकी,गीतिनाटय ,नृत्य - नाटय और रूपक प्रदर्शित होते रहते हैं।

दूरदर्शन के क्षेत्र में डॉ.शंकर शेष जी का भी प्रभाव रहा है। उनका ' चेहरे ' एक सफल दूरदर्शन नाटक है। डॉ.शेष ने नाटक की लोकप्रियता के लिए मंच या फिल्म की अपेक्षा दूरदर्शन को ही श्रेष्ठ माना है। दूरदर्शन मंच या फिल्म के बीच की सबसे अच्छी स्थिति है।" नाटक का अन्तर्भूत तनाव ' कैमरे ' का

सामंजस्य पाकर जितनी सम्पूर्णता पाता है उतनी रंगमंचपर नहीं । क्लोज अप का माध्यम होने के कारण कई बार चेहरा ही रंगमंच हो जाता है । दूरदर्शन के लिए अच्छा नाटक लिखने के लिए फिल्म की धार और नाटक का मूल पिंड आवश्यक है । दूरदर्शन रंगमंच को लोकप्रिय बनाने का श्रेष्ठ साधन है ।" [१९]

" हिन्दी में रेडियो नाटक का जन्म सन १९३६ में रेडियों पर प्रसारित पहला हिन्दी नाटक आचार्य चतुरसेन शास्त्री लिखित 'राधाकृष्ण' से हुआ । तब से और विशेषकर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से अब तक लगातार रेडियों नाटकों की तकनीक में पर्याप्त विकास और परिष्कार हो रहा है ।" [२०] यह कार्य हिन्दी के रेडियो नाटक कार कर रहे हैं । जैसे - गिरीजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नरेश मेहता, हरिश्चन्द्र खन्ना, सिध्दनाथ कुमार, लक्ष्मीनारायण लाल, विनोद रस्तोगी, विश्वम्भर मानव, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, डॉ. शंकर शेष, कमलेश्वर रमेश बख्शी, ओंकार श्रीवास्तव, राजाराम शास्त्री, दुष्यन्त कुमार, हंस कुमार तीवारी, स्वदेशकुमार, कृष्ण किशोर श्रीवास्तव, विमल रैना, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, आदि अनेक नाटककारों ने रेडियो नाटक को एक स्वतंत्र विधा का रूप दिया एवं इसके सर्वांगीण विकास में योगदान दिया । नए रेडियों नाटककारों में सुनील शर्मा, अनिल कुमार, विनोद कुमार, अनिल ठाकुर, सुमन अशोक आदि अनेक नाटककार सतत सक्रिय हैं ।

इस प्रकार सन १९४७ से आज तक रेडियो नाटक को हिन्दी साहित्य की लोकप्रिय, स्वतंत्र समृध्द एवं विकासमान विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने में काफी सफलता मिली है ।

---

१९ सारिका : १६ जनवरी, १९८१- पृ.२२ ।

२० डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी - डॉ. बादामसिंह रावत: हिन्दी नाटक के सौ वर्ष - पृ.१७६ ।

निष्कर्ष --

हिन्दी नाटक साहित्य अनेक धाराओं से बहता हुआ आज के नाटकरूपी अथाह समुन्दर में पहुँचा है। भारतेन्दु काल में इसका प्रारंभ हुआ। पाश्चात्य प्रभाव के साथ पूर्वी तत्वों का मेल लाते हुए, क्षीण रंगमंच के सहारे यह अपनी विकास की पगडंडी पर चलता रहा। फारसी रंगमंच ने इसके विकास के प्रारम्भिक चरणों में इसका साथ दिया। प्रथम प्रहसन, फिर पौराणिक, धार्मिक अनुदित, सामाजिक इस क्रम से यह धारा बहती हुई आज आधुनिक नाटकों पर आकर स्थिर हो रही हैं। इसके विकासपर पाश्चात्य प्रभाव की छाप अधिक गहरी है, जो कि बीसवीं शती की हर साहित्य विधापर है। विषय और शैली दोनों में परिवर्तन करती हुई यह धारा रंगमंच में अधिक प्रगति नहीं कर सकी, जितनी कि अन्य भाषाओं ने की है। फिर भी हिन्दी नाटक साहित्यिक दृष्टि से मौलिक और मूल्यवान रहे हैं। उनका जनजीवन से गहरा संबंध रहा है। एकांकी का विकास भी नाटक के साथ-साथ चलता रहा। अत: इस विधा का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल नजर आता है।